मीठे पदचाप

प्रकाशक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

(अंतर्गत– श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ)

मीठे पदचाप

संस्करण : प्रथम, नवम्बर, 2023
4000 प्रतियाँ

मूल्य : ₹ 125/-

प्रकाशक : **साधुमार्गी पब्लिकेशन**
अंतर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग
श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने
नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334001 (राज.)
☎ 0151-2270261
E-mail : sahitya@sadhumargi.com

आई.एस.बी.एन. : 978-93-91137-35-9

मुद्रक : साक्षी प्रिंटर्स, जयपुर, मो. 9829799888

‘मीठे पदचाप’ से ‘राम-दर्शन’

आचार्य प्रवर श्री रामलाल जी म. सा. के चिंतनों का ‘आलाप’ के माध्यम से पाठकों ने ‘राम-दर्शन’ किया। ‘राम-दर्शन’ के क्रम में कदम आगे बढ़ रहे हैं। इस कदम की ध्वनि मधुर है।

जिन पाठकों ने ‘राम-दर्शन’ नहीं किया उनकी जानकारी के लिए संक्षेप में इतना बताना है कि ‘राम-दर्शन’ एक ग्रंथमाला (सिरीज) है। इस सिरीज में आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. के चिंतनरूपी मोती भरे हुए हैं। ऐसे ही मोतियों से भरी एक पुस्तक का नाम ‘आलाप’ है। इस सिरीज की पुस्तकें कुछ विशेष हैं। एक विशेषता यह है कि ये चिंतन विभिन्न उत्तम अर्थों को प्रकट करते हैं। दूसरी विशेषता है इनका प्रस्तुतिकरण। पूर्व पुस्तकों से अलग इनमें रेखाचित्रों और प्रतीक चित्रों का प्रयोग करके इसे बोधगम्य बनाया गया है। इन चित्रों द्वारा विभिन्न उत्तम अर्थों में से किसी एक अर्थ को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। ये रेखाचित्र/प्रतीक चित्र विषय की गहराई में जाने और चिंतन के शब्दों को स्मृतिकोश में सहेजने का सुंदर अवसर उपलब्ध कराते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति सुंदर अवसर की तलाश में रहता है। अवसर के लिए ताना-बाना बुनता है। सपने देखता है। आपने भी सपने देखे होंगे। सुखी होने के सपने देखे होंगे। साधन संपन्न होने के सपने देखे होंगे। पद-प्रतिष्ठा पाने के सपने देखे होंगे। ऐसे बहुत सारे सपने देखे

होंगे। पर ऐसे सपने किसी काम के नहीं हैं। सपना देखना ही है तो ऐसा देखिए–

हो भला आत्मा का, कुछ ऐसे सुहाने स्वप्न बुनिए।
किंतु स्वप्न बुनने से पहले, 'मीठी सी पदचाप' सुनिए।।

मीठी सी पदचाप आप सुनेंगे 'राम–दर्शन' ग्रंथमाला की दूसरी पुस्तक के माध्यम से। **'मीठे पदचाप'** नाम की यह पुस्तक कदम बढ़ाकर आप सबके हृदय पर दस्तक देने आ गई है। ध्यान से उसकी पदचाप सुनिए। ध्यान से सुनने पर सुनाई देगी–

प्रेम की पदचाप
क्षमा की पदचाप
शांति की पदचाप
समता की पदचाप
सौहार्द की पदचाप
भाईचारे की पदचाप
सफलता की पदचाप

पहले मीठी पदचाप सुनिए
फिर मोक्ष का गंतव्य चुनिए

संयोजक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अंतर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहोभाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छाँव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को पुस्तक **'मीठे पदचाप'** के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अंतर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

- अर्थ सहयोगी -

स्व. दादा जी व दादी जी धरमचंद जी सेठिया एवं तीजा देवी सेठिया
और स्व. माता जी सुंदर देवी सेठिया की पुण्य स्मृति में
सुमति कुमार, अशोक कुमार, पुखराज सेठिया
बीकानेर (उदासर)/ दिनहट्टा/कूचबिहार (प. बंगाल)

।। सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें।।

विषयानुक्रमणिका

1.	तिजोरी की चाबियाँ	10
2.	मैं तो ज्ञानी हूँ	12
3.	आत्मगुणों को सँवारें	14
4.	दायित्व निर्वाह करें	16
5.	उन्नत जीवन की कसौटी	18
6.	पवित्रता परम हितकारक	20
7.	...ऐसे होगा पूर्ण सुनना	22
8.	नवजीवन प्रदायक	24
9.	स्थिरता बनाए रखें	26
10.	प्रेम का परिणाम	28
11.	किसको छोड़ें ?	30
12.	संयोग वियोगात्मक	32
13.	मन की रक्षार्थ मर्यादा	34
14.	सही उपयोग	36
15.	सामायिक कब ?	38
16.	स्वयं की शोध	40
17.	सफलता का हेतु	42

18.	अध्यात्म को साधें	44
19.	पंडित की पहचान	46
20.	तर्क का सदुपयोग	48
21.	एकचित्त बने मन	50
22.	स्वार्थ बनाता मूढ़	52
23.	उत्तेजना से बचें	54
24.	मनुष्य के दो प्रकार	56
25.	चाह से उपरत	58
26.	सोच सार्थक करें	60
27.	हा हा मुग्धा तेरा रूप	62
28.	समता की प्रतिष्ठा	64
29.	विचारों का प्रभाव	66
30.	अनेकता की एकता	68
31.	अंतरात्मा को सुनें	70
32.	आत्मानंदी बनें	72
33.	इन्द्रिय निग्रह	74
34.	विकार का हेतु	76

35.	अध्यात्म साधक की भाषा	78
36.	चित्तवृत्तियों का समीक्षण	80
37.	शत्रु को भी सम्मान दें	82
38.	उसे दूर करें	84
39.	आवेगों पर विजय पाएँ	86
40.	जीत नहीं, हार	88
41.	ईर्ष्या की आग लगे ना	90
42.	प्रमाद-परित्याग	92
43.	गुरु तत्त्व की समझ	94
44.	क्षमा से जीतें क्रोध को	96
45.	शुद्धि का स्वरूप	98
46.	हलका होने का सूत्र	100
47.	देखें! जानें! परखें!	102
48.	मानस जाप	104
49.	भक्त हृदय हो निर्मल	106
50.	आलम्बन शुद्ध हो	108
51.	उपकार के प्रति कृतज्ञता	110

52.	असहाय असत्य	112
53.	आहार विवेक	114
54.	सफल संचालन के सूत्र	116
55.	व्यक्ति का बड़प्पन	118
56.	अपने ज्ञाता बनो	120
57.	जागृत दशा उपयोगी	122
58.	अपनी अवस्था को बोध	124
59.	संभलो-संभलो	126
60.	संयम की होली न हो	128
61.	आध्यात्मिक चर्चा	130
62.	सजग श्रद्धा	132
63.	समग्रता	134
64.	अंधकार से प्रकाश की ओर...	136
65.	ज्ञान चक्षु खोलें	138

1

तिजोरी की चाबियाँ

पिता ने मृत्यु के समय पुत्रों से कहना प्रारंभ किया- मैंने सारी सम्पत्ति तिजोरी में भर दी है... कहते-कहते उसके प्राण निकल जाते हैं। परिवार वाले तिजोरी के पास पहुँचे पर चाबियाँ मिल नहीं रही थी। उसमें जो विचक्षण था, वह सोचने लगा कि चाबियाँ जाएंगी कहाँ? पिताजी अपने साथ तो ले नहीं गये। वह अपनी प्रज्ञा से चिंतन करने लगा। उसे चाबियों का पता ज्ञात हुआ व पिता की सम्पत्ति का उपयोग कर सका।

वीतराग परमात्मा ने जो उपदेश दिया, वह वैभव गणधरों ने शब्द रूपी तिजोरियों में भर दिया। एक शब्द रूपी तिजोरी में इतना वैभव है कि उसको निकालते जायें तो भी वह खाली नहीं हो सकता। पर उसकी चाबी प्रत्येक नहीं पा सकता। जो विचक्षण प्रज्ञावान पात्र होता है, उसी को वे चाबियाँ प्राप्त हो पाती हैं।

4 नवम्बर, 1992 (उदयरामसर)

1

तिजोरी की चाबियाँ

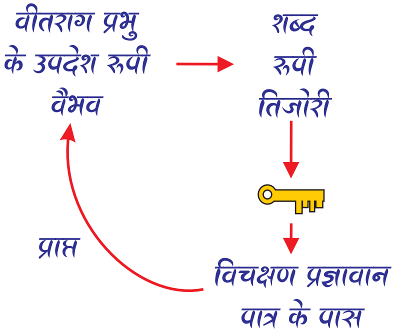

2

मैं तो ज्ञानी हूँ

एक ग्लास दूध से भरा हुआ है। किसी ने उसमें से एक बूँद दूध ग्रहण किया और स्वयं के दुग्ध पान करने का दावा करने लगा। उसने दूध चखा जरूर है, पर उसका पान नहीं किया है। यह दशा आज के अनेक अध्येताओं की है। उन्होंने शब्द रूपी ग्लास में भरे हुए दूध रूपी भावों में से बूँद तुल्य एक-आध भाव को भी प्राप्त किया या नहीं किंतु स्वयं को ज्ञानी मान लेते हैं। जहाँ स्वयं को ज्ञानी मान लिया गया, वहाँ विकास के, ज्ञान प्राप्ति के दरवाजे बंद हो जाते हैं। क्योंकि जैसे ही ज्ञान उसके पास आता है, वह कहेगा 'मैं तो ज्ञानी हूँ।' ऐसी स्थिति में ज्ञान का वहाँ प्रवेश हो नहीं पाता है। इसे भी एक प्रकार का परीषह माना गया है। इस परीषह को विरल विभूतियाँ ही सह सकती हैं अथवा उस पर विजय प्राप्त कर सकती हैं।

5 नवम्बर, 1992 (उदयरामसर)

2 मैं तो ज्ञानी हूँ

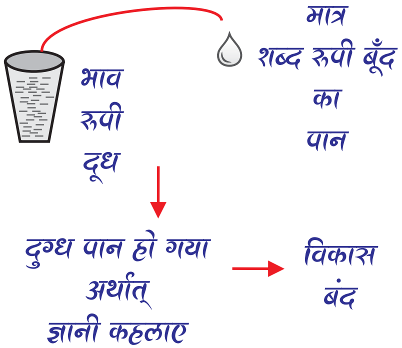

3 आत्मगुणों को सँवारें

अभय बनो।
असत्-आचरण भी हो गया हो तो उसे स्वीकार करो।
राग भाव रुलाता है।
द्वेष, घृणा का जनक है।
प्रमाद पतन का हेतु है।
अहंकार भीतरी वार करता है।
ईर्ष्या आत्मगुणों को नष्ट करने वाला भीतरी धीमा जहर है।

3

आत्मगुणों को सँवारें

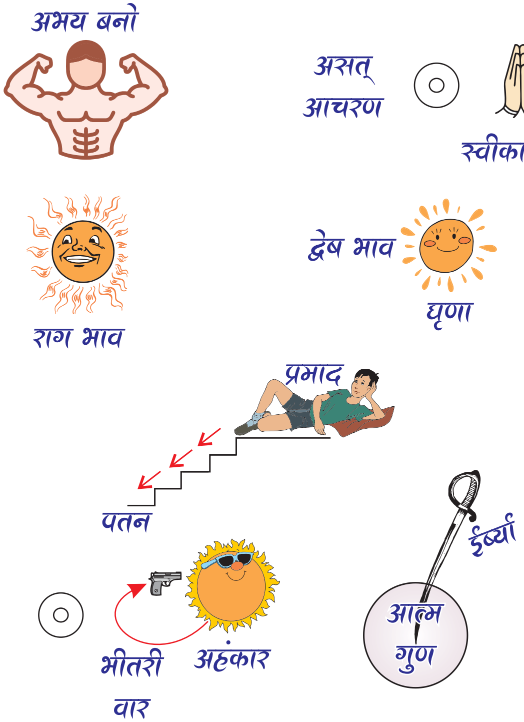

अभय बनो
असत् आचरण
स्वीकार करें
राग भाव
द्वेष भाव
घृणा
प्रमाद
पतन
ईर्ष्या
आत्म गुण
भीतरी वार
अहंकार

4

दायित्व निर्वाह करें

व्यक्ति जिस भूमिका पर स्थित है, उसकी मर्यादा का निर्वाह करना व तत्सम्बन्धी-दायित्व का पालन करना उसका करणीय है। परिस्थितियों से घबराकर दायित्व से मुकरना आत्मा की कमजोरी है। कैसी भी परिस्थिति हो, व्यक्ति को सहजता के परिप्रेक्ष्य निर्लिप्त रहते हुए समभाव पूर्वक प्रबल तितिक्षा भाव से परिस्थितियों पर अधिकार जमाना चाहिए। परिस्थितियां सजीव जीवन का एक अंग है।

6 मार्च, 1993

4 दायित्व निर्वाह करें

5 उन्नत जीवन की कसौटी

उन्नत जीवन की पहचान की कसौटी क्या है? स्वर्ण को कसौटी पर कसने पर ज्ञात हो जाता है कि वह सही है या नहीं! ऐसी कौन-सी कसौटी है जो उन्नत जीवन की पहचान करा सकती है? क्षमा और धैर्य उन्नत जीवन की कसौटियां हैं। विषम से विषम परिस्थितियों में क्षमा और धैर्य जिस जीवन में बना रहता है वह जीवन उन्नत जीवन है। वह जीवन जीवट जीवन है। उसी जीवन में सद्गुणों का समूह प्रकट होता है और संवर्धन पाता है।

12 मार्च, 1993

5

उन्नत जीवन की कसौटी

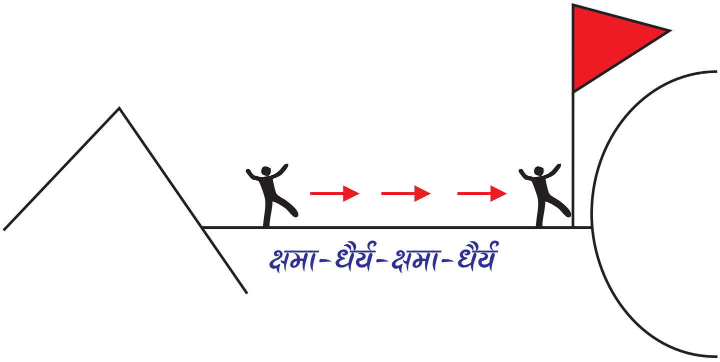

6 पवित्रता परम हितकारक

आत्मा की पवित्रता के लिए ऊपरी पोशाक या केवल क्रियाकांड मुख्य अंग नहीं है। उक्त अवस्थाओं का उद्देश्य लोकप्रयोजन है। आत्मज्ञानपूर्वक पवित्र परिणाम व शुभ अध्यवसाय पवित्रता के लिए आवश्यक है, जो निरंतर अभ्यास व दृढ़संकल्प से प्राप्य है।

13 मार्च, 1993

6

पवित्रता परम हितकारक

शुभ अध्यवसाय

\+

पवित्र परिणाम

= पवित्रता

निरन्तर अभ्यास

\+

दृढ़ संकल्प

7

...ऐसे होगा पूर्ण सुनना

इन्द्रिय से ही सुनना पूर्ण सुनना नहीं होता बल्कि इन्द्रिय से सुनकर, मन व प्रज्ञा से अर्थ ग्रहण करना और समीक्षा करना पूर्ण सुनना होता है।

14 मार्च, 1993

7 ...ऐसे होगा पूर्ण सुनना

8 नवजीवन प्रदायक

'युवा' शक्ति का प्रतीक है। अक्षरों का व्यत्य करने से युवा का 'वायु' बनता है जो कि जीवन के लिए आवश्यक शक्ति है, किंतु वह बिना दिशा-निर्देश की होती है तो प्रलयकारी बन सकती है। युवा शक्ति भी दिशारहित होकर प्रलय का रूप धारण कर लेती है। वह यदि होश के साथ सही रूप में प्रवाहित हो तो समाज को 'नवजीवन' प्रदान करने वाली सिद्ध हो सकती है। आवश्यकता है उस शक्ति के सम्यक् नियोजन की।

15 मार्च, 1993

8

नवजीवन प्रदायक

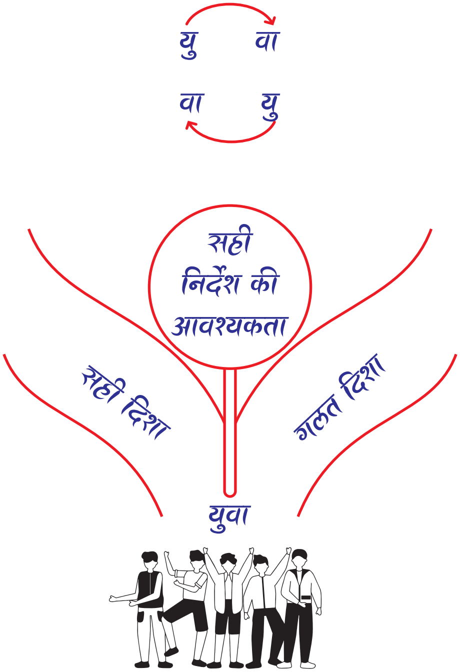

9

स्थिरता बनाए रखें

छोटी-छोटी बातों को लेकर जब तनाव की स्थिति बना ली जाती है तो मानना चाहिए कि अभी जीवन का स्वरूप प्राप्त नहीं हो पाया है। छोटी ही नहीं, बड़ी से बड़ी बात हो तब भी व्यक्ति को तनावग्रस्त नहीं होना चाहिए बल्कि अपनी स्थिरता को कायम रखना चाहिए। विषम से विषम परिस्थितियों में भी यदि व्यक्ति अपना धैर्य व साहस बनाये रखे तो वह सभी परिस्थितियों पर अपना अधिकार जमा सकता है।

16 मार्च, 1993

9

स्थिरता बनाए रखें

10

प्रेम का परिणाम

प्रेम वह गुण है जो बहुत कम व्यक्तियों में प्रकट हो पाता है। अधिकांश व्यक्ति भ्रांतावस्था में रहते हैं। प्रेम का प्रकटीकरण नहीं होते हुए भी रागात्मक भाव को प्रेम मान लेते हैं, जो कि यथार्थ में मोह की एक अवस्था है। प्रेम का प्रकटीकरण जहाँ होता है वहाँ 'मेत्तिं भूएसु कप्पए' की भावना अन्तर्हृदय से प्रवाहित होने लगती है। साथ ही उसका व्यवहार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के अनुरूप बनता जाता है।

17 मार्च, 1993

10

प्रेम का परिणाम

प्रेम

11

किसको छोड़ें?

व्यक्ति इज्जत और प्रतिष्ठा को बचाना चाहता है। उसके कारण यदि सत्य को भी छोड़ना पड़े तो वह तत्पर हो जाता है। यह कितनी विडम्बना है! होना यह चाहिए कि कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो सत्य न छूटे। सत्य को सहेजना चाहिए। उसे बचाना चाहिए। चाहे उसके लिए इज्जत और प्रतिष्ठा पर क्षणिक प्रभाव भी क्यों न पड़ता हो।

यदि सत्य अपने पास है तो इज्जत/प्रतिष्ठा स्वत: दौड़ी आयेगी।

साहसी, मनोबली, दृढ़ संकल्पी व्यक्ति विकट से विकट परिस्थितियों में भी नहीं घबराता।

20 मार्च, 1993

11

किसको छोड़ें?

12

संयोग वियोगात्मक

जहाँ संयोग जीवन के साथ जुड़ा हुआ है वहाँ वियोग की स्वत: सिद्धि हो जाती है अर्थात् वहाँ वियोग निश्चित है। फिर संयोग क्यों कहा गया? संसारी प्राणी, पुत्र-कलत्र आदि के योग हेतु लालायित रहता है। उनका योग हो जाने पर वह प्रफुल्लता का अनुभव करता है। इसलिए पुत्र-कलत्र, धन-वैभव आदि के योग को संयोग कह दिया गया, किंतु उक्त सभी का वियोग निश्चित है ही।

22 मार्च, 1993

12

संयोग वियोगात्मक

13 मन की रक्षार्थ मर्यादा

संयमी जीवन श्रेष्ठ जीवन है। इसकी मर्यादाओं की परिपालना में यदि एक बार भी मनोबल क्षीण होता है तो वह बहुत घातक सिद्ध होता है। एक बार का कच्चा पड़ा मन पुन:-पुन: उस मार्ग की ओर बढ़ता है जहाँ वह सुविधाओं का अनुभव करता है। पानी का बहाव उस ओर अधिक रहता है जिस ओर बाँध कच्चा होता है। वह पुन:-पुन: उससे बाहर निकलना चाहता है। अत: मन रूपी पानी को मर्यादा की सख्त चट्टान से बाँधे रखना आवश्यक है।

23 मार्च, 1993

13 मन की रक्षार्थ मर्यादा

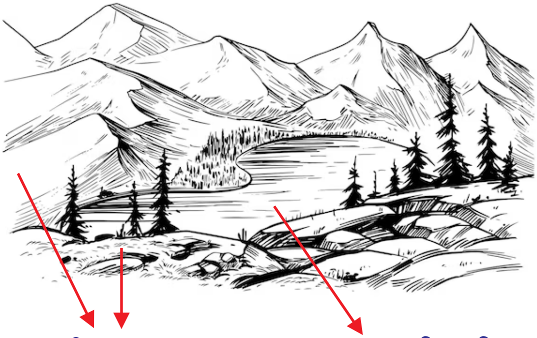

14

सही उपयोग

नहर में पानी भरपूर था। फसलों की सिंचाई के लिए पानी खोल दिया गया। लोगों ने खूब सिंचाई की। फसल लहलहा उठी। एक किसान अपने खेत को देखकर रोने लगा, कारण कि उसका खेत खाली था। जानकारी करने पर उसने बताया कि पानी मेरे खेत के पास से ही बह रहा था पर मैंने अपने खेत में उसको प्रवेश नहीं करने दिया। मन में अध्यवसायों और विचारों का पानी बहता रहता है। उसका उपयोग नहीं किया गया तो प्राप्त शक्ति सामर्थ्य से जो लाभ उठाना चाहिए उससे वंचित रहना होगा।

8 अप्रैल, 1993

14

सही उपयोग

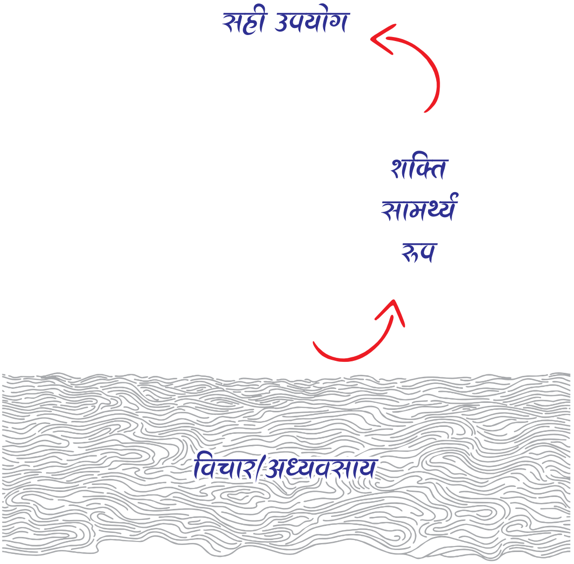

15 सामायिक कब?

सामायिक क्यों, कब व कैसे की जानी चाहिए? सामायिक आत्मभाव की प्राप्ति के लिए की जाती है। कषायादि अनात्मभाव में आत्मा इत-उत डोलती रहती है। उसे आत्मभाव में स्थित करना सामायिक का मुख्य उद्देश्य है। सामायिक कब की जानी चाहिए यह कुछ जटिल है क्योंकि आत्मभाव में स्थित रहने के लिए किसी समय विशेष की पाबन्दी क्यों? वह तो निर्बन्ध होना चाहिए। यह ठीक है किंतु बैटरी चार्ज की तरह प्रतिदिन नियमित समय रात्रि को समाप्त करने वाला तारा जब उदय हो तब आत्मभाव की साधना में दृढ़ संकल्पित होने के लिए 2 घड़ी की सामायिक आराधना होनी चाहिए। आत्मसाक्षी पूर्वक अन्तर्चिंतन पूर्वक सामायिक सम्पन्न हो।

8 अप्रैल, 1993

15

सामायिक कब?

सामायिक

कब क्यों

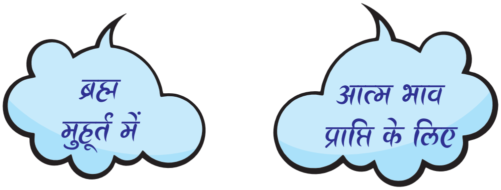

16

स्वयं की शोध

कैसी मुसीबत है कि मैं स्वयं को जानता हुआ भी स्वयं से अनभिज्ञ हूँ। मैं कथन करता हूँ किंतु कथनकर्ता से अपरिचित हूँ। मैं देखता अवश्य हूँ पर देखने वाला मुझसे ओझल है। क्या वह मुझसे सदा ओझल ही बना रहेगा? क्या मुझे उसकी खोज नहीं करनी चाहिए? क्या मानव देह प्राप्ति के बाद भी मैं स्वयं से अछूता रह जाऊँ? इसका उत्तर अधिकांश यह होगा कि नहीं! मैं स्वयं से अछूता नहीं रहूँगा। वहीं से स्वयं का शोध प्रारम्भ होगा।

9 अप्रैल, 1993

16

स्वयं की शोध

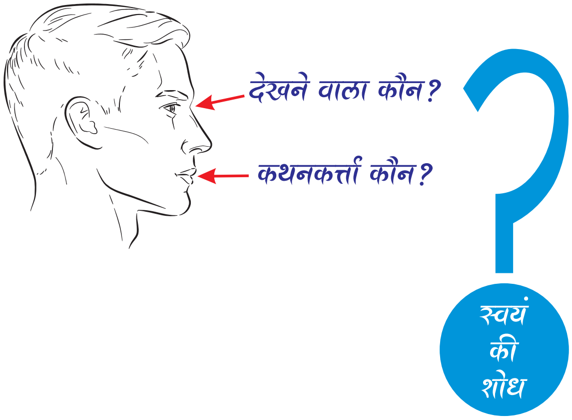

17 सफलता का हेतु

आत्मविश्वास का अभाव सफलता में मुख्य बाधक है। जहाँ आत्मविश्वास नहीं होता, वहाँ कार्य की सफलता में संदेह बना रहता है। उस स्थिति में व्यक्ति चाह कर भी कार्य कर नहीं पाता। वह जब-जब कार्य प्रारम्भ करने का विचार करता है तब-तब उसके सामने कुछ प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं। यथा; यह कब होगा, कैसे होगा, कौन संभालेगा आदि-आदि। अत: सफलता चाहने वालों को आत्मविश्वासी होना जरूरी है।

9 अप्रैल, 1993

17

सफलता का हेतु

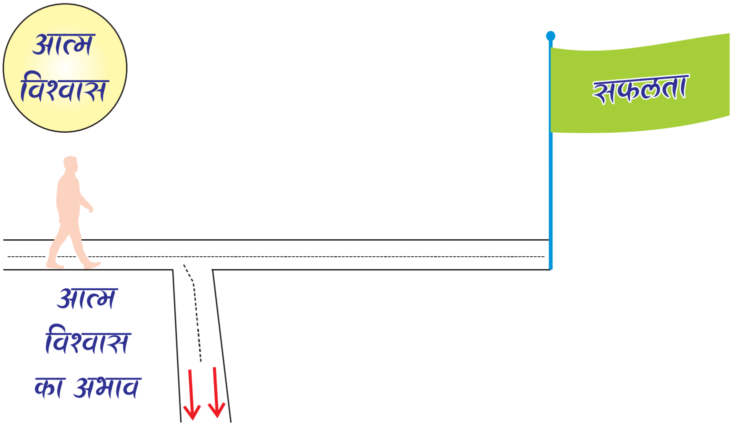

18

अध्यात्म को साधें

बर्बरता जिस समय मन पर हावी होती है, उस समय मन की सात्विक वृत्तियां दुबक जाती हैं। न जाने उस समय वे वृत्तियां कहाँ चली जाती हैं। बर्बरता के समय अध्यात्म, शुभ अध्यवसायों की शक्ति उर्वर होनी चाहिए किंतु ऐसा नहीं होता। इसका कारण स्वयं के अध्यात्म की कमजोरी है। यदि अध्यात्म गहरा हो जाय यानी अध्यात्म की स्थिति दीर्घकालीन होने के साथ ही सध जाय तो कैसी भी बर्बरता की स्थिति आ जाय, जीवन की जीवट शक्ति उससे प्रभावित नहीं हो सकती।

16 अप्रैल, 1993

18 अध्यात्म को साधें

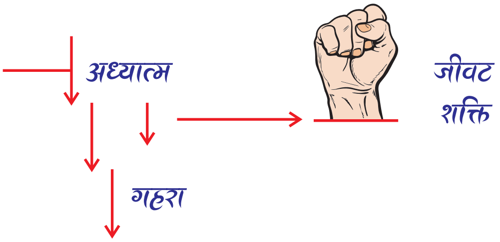

19

पंडित की पहचान

समय का जीवन/आत्मा के साथ महत्त्वपूर्ण संबंध है। समय का पारखी आत्मा की परख कर सकता है। जो आत्मा को नहीं जानता वह समय की कदर भी नहीं कर सकता है। समय का कद्रदान होना जागृत अवस्था का प्रतीक है।

जो समय की कीमत नहीं करता, जो समय का सदुपयोग नहीं करता, वह स्वयं के जीवन को सही नहीं रख सकता। क्षण का ज्ञाता, समय का ज्ञाता, अवसर का जानकार, आत्मा का ज्ञाता पुरुष ही पंडित होता है।

19 अप्रैल, 1993

19

पंडित की पहचान

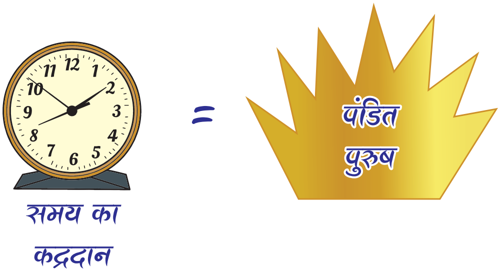

20

तर्क का सदुपयोग

व्यक्ति तर्कों में उलझता रहता है। उससे वह समाहित नहीं होता। इसका एक कारण यह भी है कि वह समाधान चाहता ही नहीं। तर्क पर तर्क पैदा करता हुआ स्वयं ही उसमें उलझ जाता है। यह विडम्बना ही है। तर्क को जिज्ञासा की पूर्ति के लिए प्रयोग करना, उसका सदुपयोग है।

20 अप्रैल, 1993

20

तर्क का सदुपयोग

21 एकचित्त बने मन

जब तक मानसिक चंचलता रहेगी, तब तक निर्णायक स्थिति तक पहुँचा नहीं जा सकता। निर्णायक स्थिति के पूर्व मन विकल्पात्मक या डोलायमान हो सकता है किंतु निर्णय के समय मन को एकचित्त होना आवश्यक है।

21 अप्रैल, 1993

21

एकचित्त बने मन

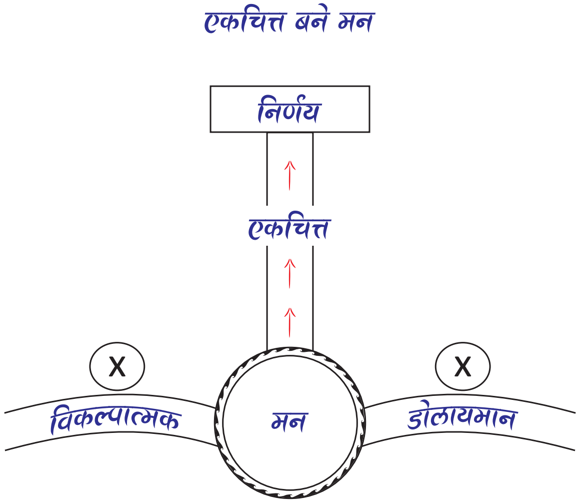

22

स्वार्थ बनाता मूढ़

स्वार्थ की भावना से व्यक्ति इतना मूढ़ बन जाता है कि वह यथातथ्य का विवेक भी नहीं कर पाता। उसकी प्रज्ञा, उसकी बुद्धि मलिन हो जाती है। हृदय की विशालता का स्रोत सूख कर संकीर्ण नाले का रूप ले लेता है। वह अपने में सिमट जाता है। मेरी तरह अन्य व्यक्ति की भी अपेक्षाएं हो सकती हैं, उस ओर वह सोच भी नहीं पाता।

22 अप्रैल, 1993

22

स्वार्थ बनाता मूढ़

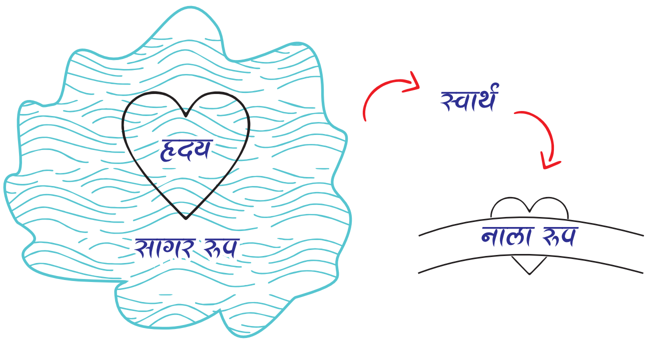

23

उत्तेजना से बचें

उत्तेजना कब किस समय अपना रूप किस निमित्त से प्रकट कर ले यह जान पाना अत्यंत कठिन कार्य है। अधिकांश व्यक्तियों का स्वयं पर अधिकार नहीं होता इसलिए उत्तेजना के क्षण अतृप्तिकारक होते हैं। पुन:-पुन: वितृष्णा जागृत होती रहती है। कभी-कभी भयंकर विवाद का रूप भी उत्तेजना से हो जाता है।

उत्तेजना के क्षण व्यक्ति को विवेक विकल बना देते हैं। उत्तेजना के पश्चात् केवल पश्चात्ताप ही अवशेष रहता है।

24 अप्रैल, 1993

23

उत्तेजना से बचें

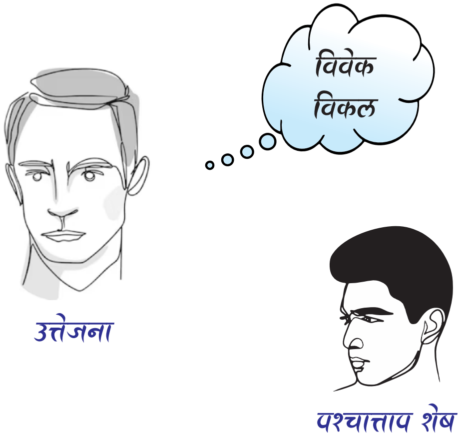

24

मनुष्य के दो प्रकार

दुनिया में प्राणी भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। उनका विभाजन किया जाय तो हजारों-लाखों ही नहीं, असंख्य भेद हो सकते हैं किंतु उन्हें मुख्य रूप से त्रस-स्थावर के भेद से दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है। उसके भी विभिन्न प्रकार हैं। उसमें मनुष्य भी एक प्रकार है। उसे भी दो भेदों में विभक्त किया जा सकता है। स्वभाव के आधार पर वे विभाग होंगे- हृदय की विशालता व क्षुद्रता के रूप में।

26 अप्रैल, 1993

24

मनुष्य के दो प्रकार

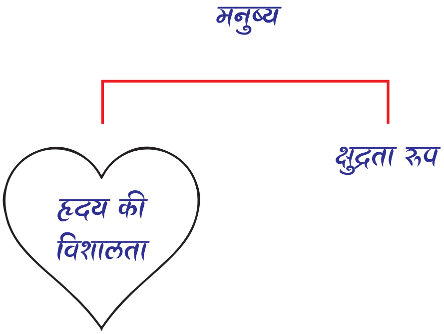

25

चाह से उपरत

सम्मान की चाह प्राय: मनुष्यों में रहा करती है। विरले व्यक्ति ही मान-सम्मान की कामना से अपने को अलग रख पाते हैं। मान/सम्मान का रूप एक ही प्रकार का नहीं होता। वह विभिन्न क्षेत्रीय व स्तरीय होता है। किसी को सामान्य स्तरीय मान की आकांक्षा रहती है तो कोई उच्च स्तर का सम्मान चाहता है। जो उक्त चाह से, कामना से उपरत हो जाता है उसका जीवन अलौकिक होता है।

27 अप्रैल, 1993

25

चाह से उपरत

26

सोच सार्थक करें

मनुष्य सोचता बहुत है। सोचना बुरा तो नहीं है किंतु सोचना वही श्रेयस्कर होता है जिसका क्रियान्वयन कर लिया जाय अर्थात् उतना ही सोचा जाय जितना क्रियान्वित किया जा सके। कल्पना के हवामहल जीवन उन्नयन में अपनी भूमिका निर्वाह नहीं कर सकते, बल्कि उससे शक्ति का दुरूपयोग होता है।

जो सोचा जा रहा है वह यदि आचरण में उतरता जाता है तो उससे शक्ति का विकास होता है। आत्मा बलवती होती है। उसका पौरुष जागृत हो जाता है। अत: जो सोचें उसे सार्थक करें।

28 अप्रैल, 1993

26

सोच सार्थक करें

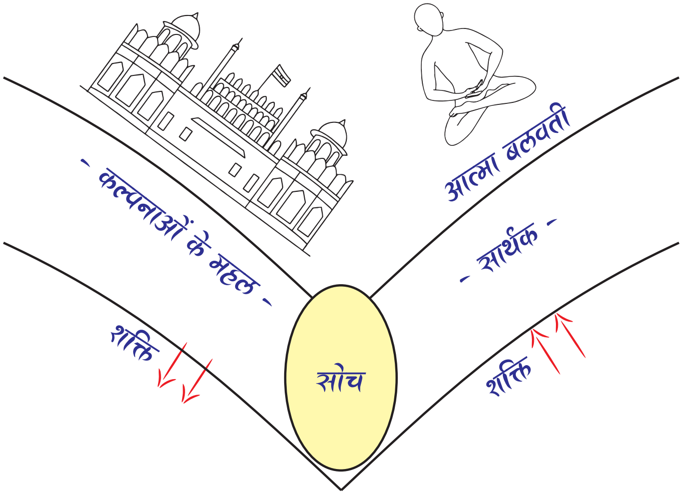

27

हा हा मुग्धा तेरा रूप

मुग्धा तुम्हारी माया विचित्र है। क्षण-क्षण में तुम्हारा रूप परिवर्तित हो जाता है। ऐसा परिवर्तित होता है कि सहसा कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता। संसार में बहुत से प्राणी तुम्हारी उपासना करने वाले हैं। सेठ हों या व्यापारी, डॉक्टर हों या वकील, श्रावक हों अथवा साधक, सब पर तुम्हारा वर्चस्व है। यहाँ तक कि संयमधारियों पर भी तुम हावी हो। वहाँ भी तुम्हारी तूती बजती है। तुम्हें समझ पाना दुष्कर है।

29 अप्रैल, 1993

27 हा हा मुग्धा तेरा रूप

माया जाल

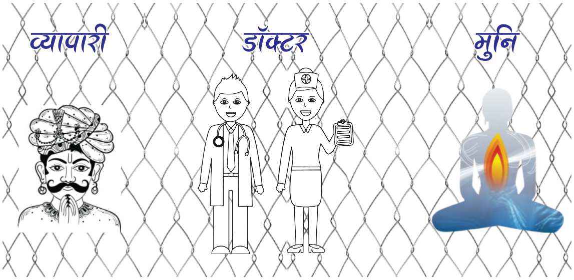

28

समता की प्रतिष्ठा

समता भाव को फैलाते हुए, समता भाव की प्रतिष्ठा करते हुए ईर्द-गिर्द अवस्थाओं पर भी पैनी निगाह आवश्यक है। ऐसा न हो कि समता साम्राज्य में मंथरा जैसा कोई भी कारण उपस्थित हो जाय और उसके साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दे।

समता की प्रतिष्ठा में विषमता के कारणों को नष्ट करना होगा। साथ ही समता के पल्लवन हेतु तदनुरूप वायुमण्डल का निर्माण करना होगा। परिपार्श्व में भी समता परिव्याप्त हो यह आवश्यक है।

3 मई, 1993

28

समता की प्रतिष्ठा

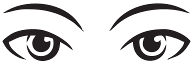

पैनी निगाह आवश्यक!!

29

विचारों का प्रभाव

विचारों का जीवन के साथ घनिष्ठ संबंध है। विचारों में जब विकृति पैदा होती है तो अनेक बीमारियों का प्रादुर्भाव हो जाता है। व्यक्ति स्वयं को रुग्ण महसूस करने लगता है। युगलिक काल में विचार भद्र होते थे। वहाँ अस्वस्थता नहीं होती थी। वैज्ञानिकों ने भी यह सिद्ध कर दिखाया है कि विचारों का प्रभाव जीवन पर पड़ता है अत: विचारों को दूषित होने से रोकना चाहिए। उनका प्रवाह सदा निर्मल रहना लाभप्रद है।

4 मई, 1993

29

विचारों का प्रभाव

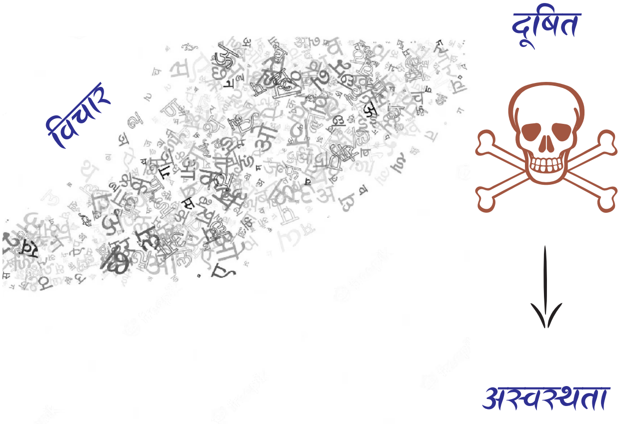

30

अनेकता की एकता

एकता के लिए अनेक प्रयत्न किये जा रहे हैं, पर समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों होता है। अनेकता में एकता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। मैं स्वयं अनेक से एक हूँ। मैं ज्ञाता भी हूँ, द्रष्टा भी हूँ, ध्याता भी हूँ। इसी तरह मेरे में अनेकताएं रही हुई हैं, फिर भी यह एकत्व का कितना सुंदर प्रसंग है कि मैं एक हूँ। अनेकत्व में एकत्व मेरा स्वभाव है। अत: प्रत्येक आत्मा में एकत्व की चाह होना स्वाभाविक है।

5 मई, 1993

30

अनेकता की एकता

अनेकत्व में एकत्व मेरा स्वभाव

31

अन्तरात्मा को सुनें

किसी भी कार्य को करने के पहले दो क्षण ठहर कर उसकी समीक्षा कर लेनी चाहिए। अन्तरात्मा की साक्षी भी उपलब्ध करना चाहिए। तटस्थ भाव से अन्तरात्मा का निर्णय हितकारी होता है अत: उस तटस्थ स्वस्थ आत्मा की आवाज को अवश्य सुनना चाहिए। उसे दबाने से अनेक विकृतियां पैदा हो जाती हैं।

6 मई, 1993

31

अन्तरात्मा को सुनें

32

आत्मनंदी बनें

व्यक्ति जब प्रतिद्वन्दी रूप में होता है तो वह स्वयं का स्तर बनाये रखने हेतु येन-केन-प्रकारेण उपाय करता है। उसका स्तर कैसा भी हो किंतु वह स्वयं को उच्च सिद्ध करने का प्रयत्न करता है। स्तर का मापदण्ड उसका स्वयं का होता है। उसे सिद्ध करने के तर्क भी उसके स्वयं के होते हैं। अत: प्रतिद्वन्दी नहीं आत्मनंदी बनें।

आवेग और उन्माद क्षणिक एवं अल्पकालिक होते हैं। उनका अस्तित्व आँधी व बाढ़ के तुल्य होता है।

8 मई, 1993

आत्मनंदी बनें

प्रतिद्वन्दी

☑ आत्मानंदी बनें

33

इन्द्रिय निग्रह

कामेच्छा की सम्पूर्ति का साधन केवल कोई खास अंग ही नहीं होता। विभिन्न चेष्टाओं के द्वारा भी उसकी पूर्ति की जा सकती है। जैसे देव, करतल स्पर्श, रूपदर्शन, मानसिक अध्यवसाय मात्र से अपनी तृप्ति कर लेते हैं। यह अवस्था मानव के साथ भी घटित हो सकती है। इसलिए ब्रह्मचारी के लिए इन्द्रिय निग्रह, मन निग्रह अत्यावश्यक है।

10 मई, 1993

33 इन्द्रिय निग्रह

ब्रह्मचारी = इन्द्रिय
+
मन निग्रह

आवश्यक!!

34

विकार का हेतु

विजातीय संयोग से विकार पैदा होता है। जैसे किसी व्यक्ति के लिए उसके ब्लड ग्रुप से अलग ग्रुप का ब्लड हानिकारक होता है, उसी तरह शरीर भी विजातीय तत्त्वों के संग्रह से अस्वस्थ होता है। आत्मा भी विजातीय तत्त्वों के संयोग से अस्वस्थ होती है। जैसे-जैसे विजातीय तत्त्व व्यक्ति से हटते जाते हैं वह अरुज/निरोग/स्वस्थ होता जाता है।

11 मई, 1993

विकार का हेतु

A+
ब्लड
ग्रुप

AB–
ब्लड
ग्रुप

विजातीय तत्त्व हानिकारक

35 अध्यात्म साधक की भाषा

अध्यात्म साधक की भाषा भी अध्यात्मपरक होनी चाहिए। अध्यात्म भाव में चलने वाले सद्गृहस्थ को सहसा अर्थाभाव खटकता नहीं है। कदाचित् उसे अर्थ की आवश्यकता पड़ जाए और वह उसे जुटाने के प्रयत्न करता है तो उसकी भाषा ऐसी होती है कि मैं अपने अन्तराय कर्म को दूर कैसे करूं। अन्तराय कर्म को हटाने का उपाय क्या है?

12 मई, 1993

35

अध्यात्म साधक की भाषा

36 चित्तवृत्तियों का समीक्षण

चित्तवृत्तियां अनेक रूपों में निर्मित होती रहती हैं। ये सूक्ष्म रूप से संचित हो जाती हैं। समय-समय पर उभरकर व्यक्त भी होती हैं। इन चित्तवृतियों का समीक्षण होना चाहिए। समीक्षण ध्यान पद्धति के द्वारा उनकी शुभाशुभ अवस्थाओं, परिणमन आदि का ज्ञान किया जाए, उनसे परिचय किया जाय। तत्पश्चात् उनके निराकरण की सम्यक् अवस्था बन सकती है।

13 मई, 1993

36

चित्तवृत्तियों का समीक्षण

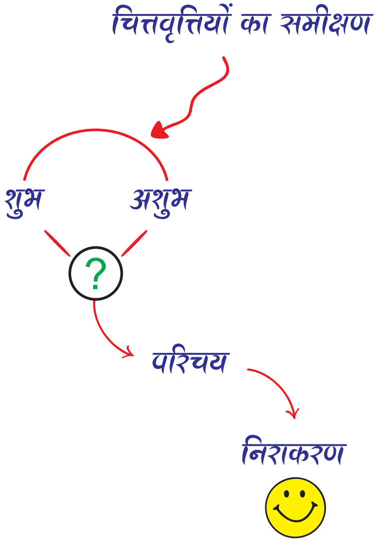

37

शत्रु को भी सम्मान दें

एक लोकोक्ति है कि 'गुड़ दिये मरे तो जहर क्यों देवे।' इस लोकोक्ति में बड़ा सार भरा है। इसका सार है कि जो शत्रुता, आदर, सत्कार, सम्मान देने से समाप्त हो उसे कड़वी घूँट देने की क्या आवश्यकता। कड़वी घूँट से एक बार शत्रुता दब सकती है किंतु उसकी शृंखला दीर्घकाल तक चलती रहती है। अत: शत्रु को भी समुचित आदर देना चाहिए। मित्र को आदर देना सामान्य बात है किंतु शत्रु को आदर देना हृदय की विशालता का द्योतक है।

14 मई, 1993

37 शत्रु को भी सम्मान दें

38

उसे दूर करें

व्यक्ति स्वयं के प्रति जागरूक नहीं है। वह एक तरफ दृढ़ संकल्पित होता है तो दूसरी तरफ उसकी कमजोरी दूर रहकर हँसती है कि कितने ही संकल्प करो, जब मैं आऊँगी तो संकल्पों के सारे महल ढह जाएंगे। व्यक्ति कमजोरी से जितना दूर रहना चाहता है, वह उतना ही विभिन्न रूप धर कर उसे घेर लेती है। जिससे वह बेवश हो जाता है। संकल्पों के महल ढहने लगते हैं। अत: संकल्पों के महल को बनाये रखना हो तो कमजोरी से दूर नहीं रहें बल्कि उसे दूर करें।

15 मई, 1993

38

उसे दूर करें

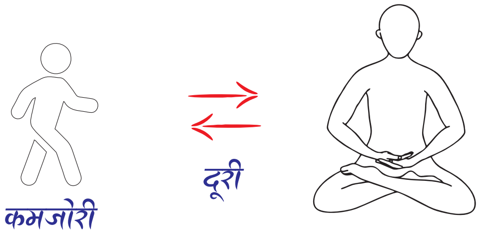

कमजोरी
को
ही
दूर
करें!!

39

आवेगों पर विजय पाएँ

आँधी और तूफान आने के बाद देखा जाता है कि मकान धूल से भर गया है। जगह-जगह लकड़ियां बिखर गयी हैं। खिड़की के शीशे भग्न हो गये हैं। घर का सामान इधर-उधर बिखरा पड़ा है। एक प्रकार की नि:शब्दता छायी हुई है। वह नि:शब्दता एक अनचाही अवस्था का प्रतीक है। इसी प्रकार जब भीतर की आँधी-आवेग जोर से आता है तो भीतर को तहस-नहस कर देता है। वर्षों की साधना धूमिल हो जाती है। साधक की आत्मा अपने इस तहस-नहस घर को देखती है तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाती है। अत: आँधी और आवेगों पर विजय पाना चाहिए।

17 मई, 1993

39

आवेगों पर विजय पाएँ

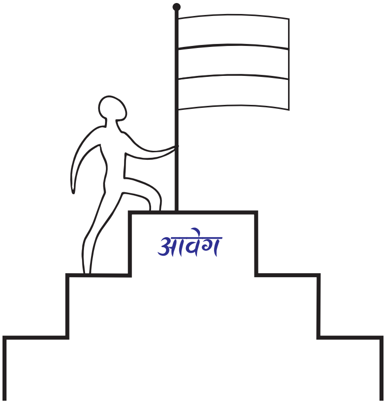

40

जीत नहीं, हार

व्यक्ति नीति व धर्म से भी हटकर अपना काम निकालना चाहता है। अपना काम सम्पन्न करने को ही वह नीति मानने लगता है। काम निकालने के लिए वह अनेक प्रयत्न करता है। जो प्रयत्न कारगर हो जाय उसी में वह अपनी विजय मानकर गर्व से फूला रहता है। यह वस्तुत: जीत नहीं, हार है।

18 मई, 1993

40

जीत नहीं, हार

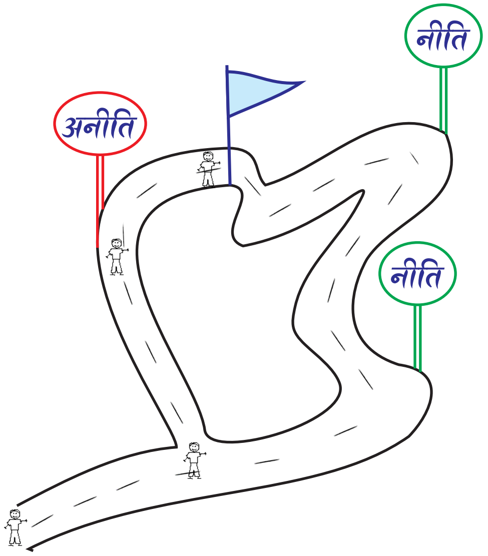

41

ईर्ष्या की आग लगे ना

ईर्ष्या की आग स्वयं को, परिवार को जलाने वाली होती है। उसमें व्यक्ति तिल-तिल कर जलता रहता है। कभी-कभी वह चाहता है कि सारी बातें खोलकर स्पष्ट कर दी जाएं किंतु उसका साहस हो नहीं पाता। एक प्रकार से वह अपनी स्थिति से भयभीत भी रहने लगता है। वह आत्मविश्वास इतना खो चुका होता है कि चाहकर भी अपने दिल की बात प्रकट कर नहीं पाता। मानसिक बीमारी से ग्रस्त हो अपनी जीवनलीला समाप्त कर डालता है।

19 मई, 1993

41 ईर्ष्या की आग लगे ना

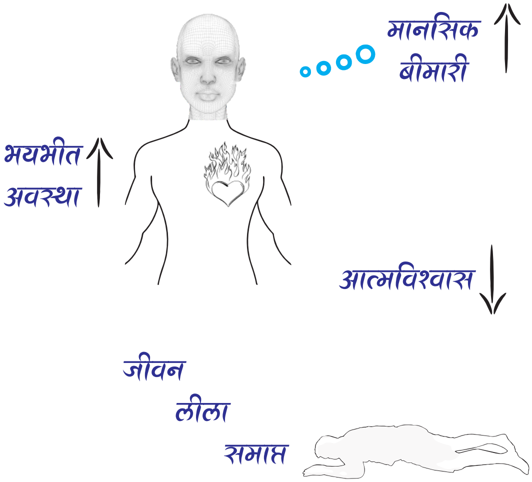

42

प्रमाद-परित्याग

समय मात्र का प्रमाद नहीं करना एक अबूझ पहेली है। कोई सोच सकता है कि एक समय इतना सूक्ष्म होता है कि उतना प्रमाद न हो यह कैसे संभव है, किंतु ज्ञानियों की दृष्टि बहुत गहरी है। एक समय भी आत्मा विस्मृति को प्राप्त हो तो वह अपने पीछे घोर तमिस्रा की एक लम्बी शृंखला जोड़ लेती है फलस्वरूप आत्मा विपथगामी बन सकती है। उसका उत्कर्ष रुक जाता है। इसलिए समय मात्र का प्रमाद उचित नहीं।

20 मई, 1993

42

प्रमाद परित्याग

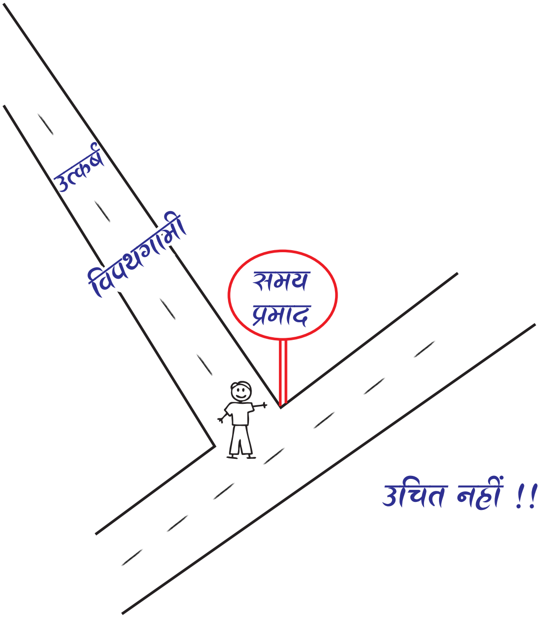

43

गुरु तत्त्व की समझ

गुरु का अर्थ होता है भारी। गुरु तिराने वाले होते हैं फिर भारी कैसे ? उन्हें हलका होना चाहिए। यहाँ भारी का तात्पर्य उनके हृदय की गहनता को समझ पाना कठिन होने से है। गुरु द्वारा अपने शिष्यों को कबूतर की गरदन मरोड़ देने का परीक्षण प्रसिद्ध है। उनके हृदय की गहराई चैतन्य अवस्था से ही पाई जा सकती है। गुरु कोई शरीर नहीं है। शरीर के भीतर जो जागृत चैतन्य है वह गुरु है। इसकी प्राप्ति सहज नहीं है, क्योंकि व्यक्ति बाहर-बाहर घूमने का अभ्यासी है। अत: गुरु तत्त्व को समझें।

22 मई, 1993

43

गुरु तत्त्व की समझ

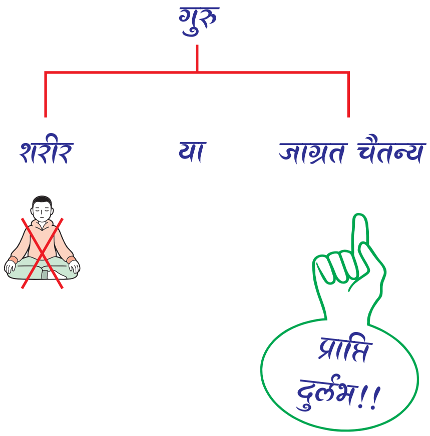

44

क्षमा से जीतें क्रोध को

क्रोध व्यक्ति की एक दुर्बल नस है। इस नस पर चोट पड़ते ही अहंकार फुफकार करता उठ खड़ा होता है। क्रोध का अस्तित्व तभी तक रहता है, जब तक सामने भी कोई क्रोधी हो। सामने क्षमा आ जाय तो क्रोध टिक नहीं सकता। उसके पैर उखड़ जाते हैं। जैसे मयूर की आवाज सुनते ही सर्प भागने लगता है। अत: क्षमा भाव को जागृत करें।

24 मई, 1993

44

क्षमा से जीतें क्रोध को

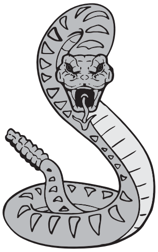

क्रोध रूपी सर्प

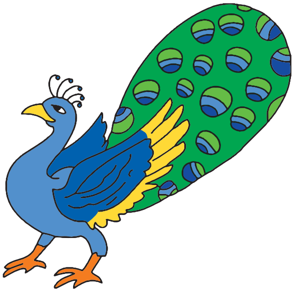

क्षमा रूपी मयूर

45

शुद्धि का स्वरूप

जीवनी शक्ति ही प्राण है। प्राण जीवन का प्रतीक है। प्राण यदि सक्रिय न हो तो जीवन मृत तुल्य हो जाता है। प्राण शक्ति को जागृत रखने के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि साधन हैं। ध्यान के द्वारा प्राण शक्ति को बल प्राप्त होता है। खान-पान, रहन-सहन का भी प्राणों पर प्रभाव पड़ता है, अत: साधक को देश, क्षेत्र, काल और भाव की शुद्धि करनी चाहिए।

25 मई, 1993

45 शुद्धि का स्वरूप

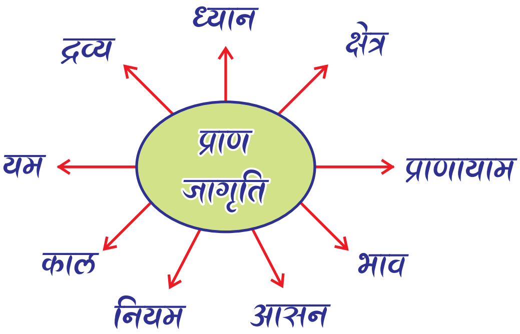

46 हलका होने का सूत्र

आलोचना का मनोविज्ञान के साथ घनिष्ठ संबंध है। दूसरे शब्दों में कहें तो आलोचना का सिद्धान्त मनोविज्ञान ही है। भीतरी ग्रंथियों का विमोचन आलोचना से होता है। आलोचना करने वाला व्यक्ति स्वयं में हलकापन अनुभव करने लगता है। उसका जीवन व्यवहार परिवर्तित हो जाता है। मनोविज्ञान भी भीतरी ग्रंथियों को समाहित करने की दिशा में कार्यरत है।

26 मई, 1993

46

हलका होने का सूत्र

47

देखें, जानें, परखें

दूर से सुंदर लगने वाले सारे पदार्थ यथार्थ में सुंदर नहीं होते। सारे कुरूप भी नहीं होते। इसलिए दूर से ही किसी के प्रति कोई मानसिकता बना लेना हितकर नहीं है। अत: किसी के प्रति मानसिकता तय करने के पहले उसे समीप से देखने और जानने का प्रयत्न करना चाहिए। दूर से ही बनायी गई मानसिकता कभी-कभी भयंकर रूप ले लिया करती है। अत: मानसिकता बनाने के पहले समीप से देखने और परखने की आवश्यकता है।

27 मई, 1993

47

देखें, जानें, परखें

समीप से देखें

परखें

जानें

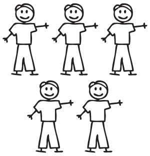

48

मानस जाप

मानस जाप से जो आनंद प्राप्त होता है वह मात्र नाम स्मरण से नहीं हो सकता। जाप के कई प्रकार हैं किंतु जापकर्ता जिसमें तादात्म्य प्राप्त कर ले उसके लिए वही हितकर है। प्रत्येक में तादात्म्य स्थापित करता हुआ वह मानस जाप यानी अजपा जाप-अखण्ड जाप तक पहुँचने का प्रयत्न करे। यह साधना से संभव है। असंभव जैसी कोई स्थिति नहीं है।

28 मई, 1993

48

मानस जाप

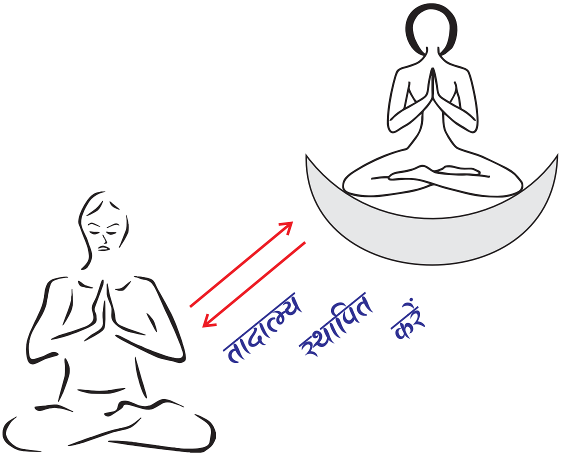

49

भक्त हृदय हो निर्मल

परात्मा की भक्ति के लिए हृदय निर्मल होना आवश्यक है। हृदय यदि मलिन है, दुर्गन्ध से भरा हुआ है तो सामान्य व्यक्ति भी समीप आना नहीं चाहेगा। हृदय की दुर्गन्ध है; छल, कपट, मोह, ममता, लालच आदि। इस दुर्गन्ध का अनुभव हर कोई नहीं कर पाता। राजमहल में योगी को दुर्गन्ध आती है पर राजा को नहीं। चमारों को चमड़े की गन्ध नहीं आती पर दूसरों के लिए असह्य हो जाती है। अत: हृदय की दुर्गन्ध से परमात्मा हमारे समीप नहीं आ सकते।

30 मई, 1993

49

भक्त हृदय हो निर्मल

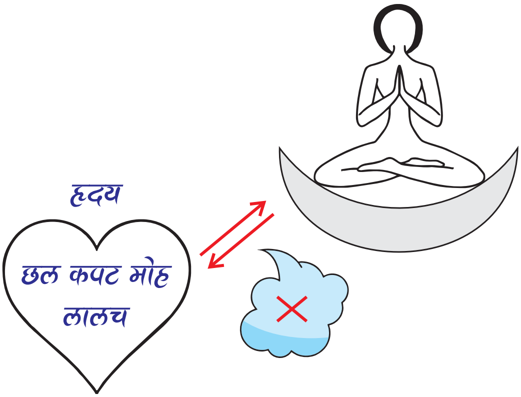

50 आलम्बन शुद्ध हो

बच्चा जब जन्म लेता है तब से वह दूसरों का आलम्बन लेता है। जो प्राय: जीवन पर्यन्त अवलम्बन पर चलता है। हमारी साधना में भी अवलम्बन की आवश्यकता है। अवलम्बन से विराट शक्ति केन्द्र उद्घाटित होते हैं किंतु अवलम्बन लेने के विषय में विवेक की अत्यन्त आवश्यकता है। अवलम्बन सम्यग् होने पर साधना भी सम्यक् हो सकती है।

31 मई, 1993

50

आलम्बन शुद्ध हो

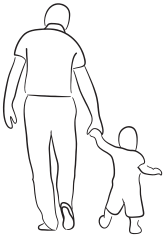

बचपन!!

साधना!!

आलम्बन
शुद्ध!!

51

उपकार के प्रति कृतज्ञता

स्थविर प्रमुखों के उपकार के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। इस अर्श में उन्होंने जो कुछ सिखाया उसकी वस्तुत: शासन संचालन में अत्यावश्यकता थी अन्यथा मैं 'नवसिखिया' (स्थविर प्रमुख श्री के कथनानुसार) ही रह जाता। मैं नवसिखिया नहीं रह जाऊं, सफल शासन संचालक बनूं इस दृष्टि से स्थविर प्रमुखों का उपकार भुलाया नहीं जा सकता। जो सीख वर्षों में आती वह चंद दिनों में आ गयी यह क्या कम उपकार है!

1 जून, 1993

51

उपकार के प्रति कृतज्ञता

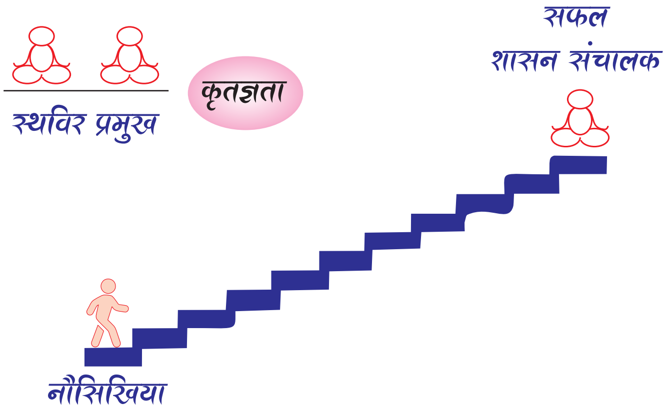

52

असहाय असत्य

सत्य बोलने का उपदेश बहुत सरल है। दूसरी तरफ देखें तो कोई भी व्यक्ति पूरा झूठा-असत्यवादी नहीं हो सकता है। असत्य पंगु है। वह सत्य के बिना चल नहीं सकता। इसकी गति में सत्य का सहारा आवश्यक है। पूर्ण सत्यवादी होने का उपदेश अवश्य दिया जाता है किंतु पूर्ण सत्यवादी विरले ही होते हैं।

शुगर कोटेड दवाओं की तरह सत्य कोटेड असत्य ही बजार में अधिक बिकता है।

2 जून, 1993

52

असहाय असत्य

शुगर कोटेड दवा

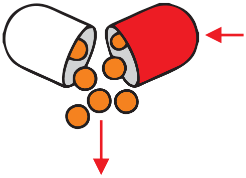

शुगर कोटेड (सत्य)

दवा (असत्य)

असत्य बेसहारा!!

53

आहार विवेक

आहार के विषय में बहुत कम व्यक्ति सजग होते हैं। बहुत कम व्यक्ति ऐसा सोचते हैं कि भोजन कब किया जाय, कैसा किया जाय और कितना व कैसे किया जाय। इन चार प्रश्नों के समाधान पूर्वक जो भोजन ग्रहण करता है वह सहसा रुग्ण नहीं हो सकता। बीमारी का मुख्य कारण आहार के प्रति अविवेक भी है। भोजन ग्रहण करने के पूर्व साधक को उक्त चार प्रश्नों का आत्मसाक्षी से उत्तर प्राप्त कर तदनुरूप आहार ही ग्रहण करना उपयुक्त रहता है।

3 जून, 1993

53

आहार विवेक

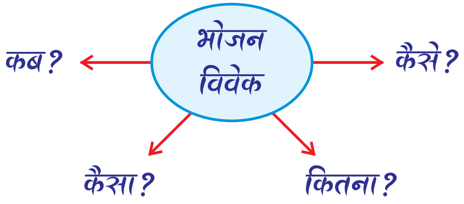

54

सफल संचालन के सूत्र

संचालक का दीर्घ दृष्टि होना आवश्यक है। उसके सामने अनेक तरह की अवस्थाएं आती रहती हैं, जिनका समन्वय उसे अपनी विचरण प्रज्ञा से करना होता है। संचालक में क्षम, दम व सम की त्रिपुटी का होना भी आवश्यक है। साथ ही सफल संचालक को कभी भी हताश-निराश नहीं होना चाहिए। हर मोड़ पर उसके जीवन में सद्पुरुषार्थ के प्रति उत्साह रहना चाहिए।

4 जून, 1993

54 सफल संचालन के सूत्र

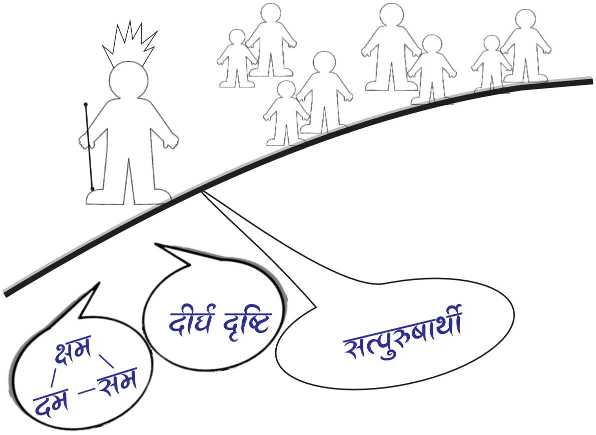

55

व्यक्ति का बड़प्पन

आदेश देने मात्र से व्यक्ति बड़ा नहीं होता। आदेश सहर्ष स्वीकार्य होने पर वह बड़ा है। यह तब संभव होता है जब अपने अधीन व्यक्तियों के विचारों का, मानसिक अवस्थाओं का सूक्षमता से अध्ययन हो व उनकी मानसिकता को अनुकूल बनाने के लिए समीचीन प्रयास हो।

5 जून, 1993

55 व्यक्ति का बड़प्पन

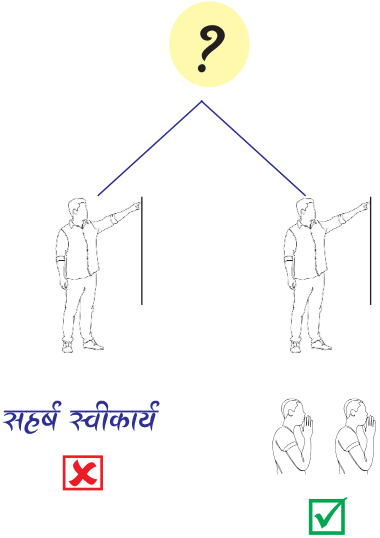

56 अपने ज्ञाता बनो

साधक को शरीर विज्ञान की उतनी ही आवश्यकता है जितनी आत्मविज्ञान की जानकारी की। पंजाब में हुए ऑपरेशन ब्लू-स्टार में बहुत से भारतीय जवान खेत गए। इसका कारण था कि वे स्वर्ण मंदिर की भीतरी स्थिति से अनभिज्ञ थे। इसी तरह शरीर विज्ञान की जानकारी के अभाव में साधक भटक सकता है। साधक भटके नहीं, इसलिए उसे यह ज्ञान भी सूक्ष्मता से होना चाहिए कि शरीर से किस समय किस प्रकार की प्रवृत्ति हो रही है, उसके भीतर की कैसी स्थिति है, उसकी धातुएं कितनी मजबूत हैं। यह ज्ञान होते हुए साधक को अपने लक्ष्य से विस्मृत भी नहीं हो जाना चाहिए। अपना मूल लक्ष्य सम्मुख रखते हुए आभ्यंतर अवस्थाओं का विज्ञान करना उचित रहता है।

5 जून, 1993

56

अपने ज्ञाता बनो

आत्मा + शरीर

ज्ञाता बनो!!

57 जागृत दशा उपयोगी

हमारी बहुत सी क्रियाएं सुसुप्ति में होती रहती हैं। हम जान ही नहीं पाते कि अमुक क्रिया मेरे द्वारा सम्पन्न की जा रही है। बस एक प्रवाह है, एक अभ्यास है, हाथ स्वयं हिल उठता है। पैर भी गतिशील हो जाते हैं। किंतु विडम्बना है कि मैं उस समय किसी अलग क्षेत्र में होता हूँ।

गुरु को वंदन कर रहे हैं। गुरु का ध्यान हमारी वंदना की तरफ है या नहीं। गुरु का उपयोग किधर भी रहे हमें तो वंदना करनी है। हमारी निर्जरा तो हो ही रही है। यह एक प्रवाह है। अभ्यास है। ढर्रा है। इसे बदलिए। गुरु की उपयोग दशा व हमारी जागृत दशा में जो वंदन होता है वह विशेष लाभकर होता है। उस समय गुरु की ऊर्जा, शक्ति किरणें जो विकीर्ण होती हैं, जो हमें प्राप्त होती हैं, उससे सहज ही जीवन में भव्य रूपान्तरण होता है। देने वाला उपयोग भाव पूर्वक दे रहा हो और लेने वाला सजग हो तो प्रदेय व्यर्थ नहीं जाता। क्योंकि जागृत दशा है।

7 जून, 1993

57

जागृत दशा उपयोगी

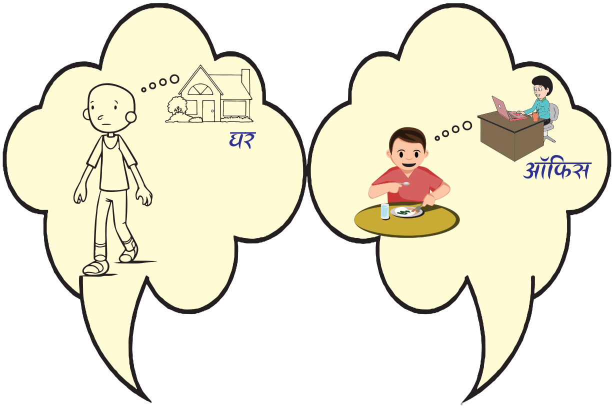

जागृत दशा हो

58

अपनी अवस्था का बोध

हे आत्मन्! तुम्हें अपनी अवस्था का सदा बोध रहना चाहिए। पद अहंकार के लिए नहीं। विभूषा के लिए नहीं। स्वयं का ऊँचापन दिखाने के लिए नहीं। पद की गरिमा क्षमा में है। मृदुता, सरलता, सहजता व निर्लिप्तता में है। स्वयं को ऊँचा उठाने के लिए है। अत: सदा सजगता पूर्वक चलने का अभ्यास आवश्यक है।

12 जून, 1993

58

अपनी अवस्था का बोध

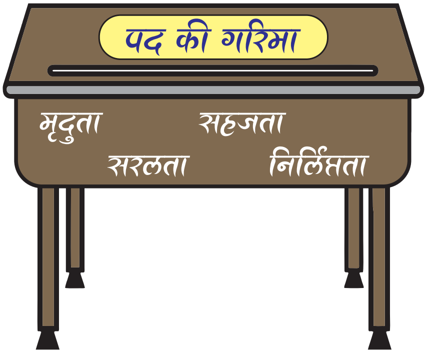

59

संभलो-संभलो

सहज समाधि के लिए मन को शांत करना अनिवार्य है। मन में किसी भी प्रकार की विषमता है, ऊँच-नीच है, तो चाहे कितनी भी योग साधना कर ली जाय, कितना भी जप-तप-ध्यान आदि किया जाय, वह बंजर भूमि में बीज डालने के तुल्य है।

साधक, सावधान! संभलो! प्रत्येक कदम संभाल कर रखो। एक भी कदम यदि चूक गये, पतन हो गया, तो वह पतन कहाँ तक ले जाएगा, पता नहीं। अत: संभलो।

19 जून, 1993

59 संभलो संभलो

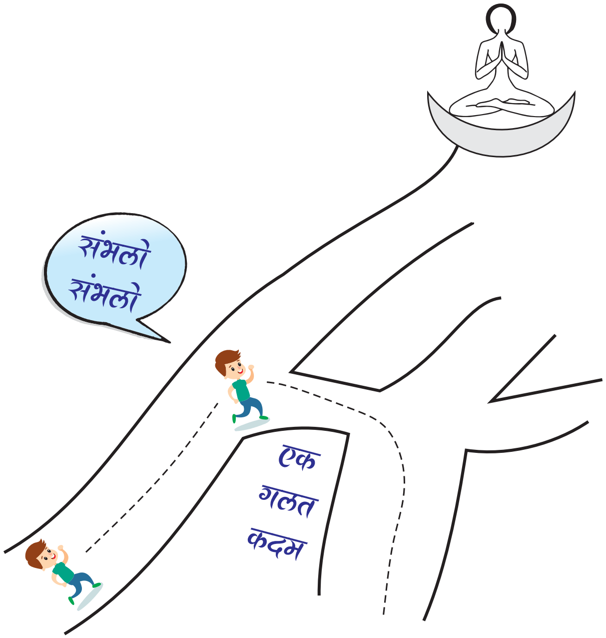

60

संयम की होली न हो

वैरागी भाई-बहनों को लेकर यदि हमारे संयम की होली होती हो तो मैं स्पष्ट कहना चाहूँगा कि यदि नई दीक्षाएं कम होती हों अथवा नहीं भी हों तो हमारा कुछ भी नुकसान होने वाला नहीं है। संयम की होली करके अधिक दीक्षाओं की दौड़ केवल खतरनाक ही सिद्ध होने वाली नहीं है अपितु उससे जन्म-जन्मान्तर बिगड़ सकता है।

22 जून, 1993

60

संयम की होली न हो

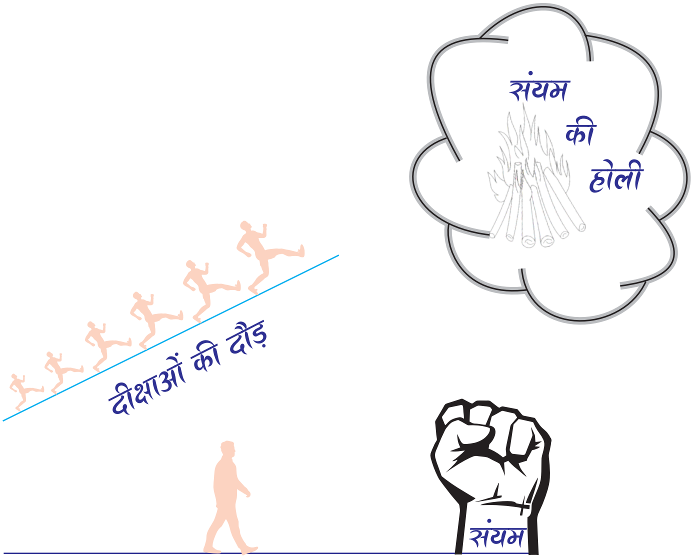

61

आध्यात्मिक चर्चा

आध्यात्मिक जीवन की चर्चा करना आनंददायक होता है किंतु जीवन व्यवहार में समय आने पर अध्यात्म को विस्मृत कर दिया जाता है। यही द्वैत है। यही भेद है, अद्वैत की साधना करें। अद्वैत को साधें। अद्वैत यानी जो अध्यात्म है वही जीवन व्यवहार है। उस स्थिति में प्रभु महावीर का उद्घोष 'मेत्तिं भूएसु कप्पए' चरितार्थ हो सकता है।

30 जून, 1993

61

आध्यात्मिक चर्चा

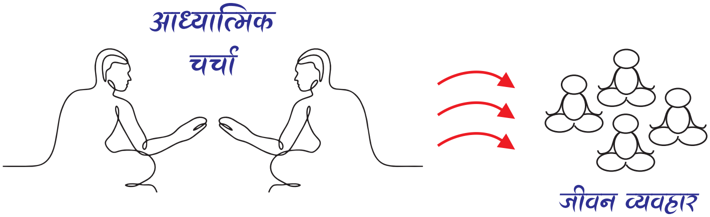

अद्वैत को साधें!!

62

सजग श्रद्धा

श्रद्धा का यथार्थ स्वरूप जाने बिना कभी-कभी उसे अंधश्रद्धा के रूप में व्यक्त कर दिया जाता है। यथार्थ में श्रद्धा अंधी होती है क्योंकि वह साध्य के प्रति पूर्ण समर्पित होती है अर्थात उसका मार्ग एक तरफा होता है। बालक सुभग (सेठ सुदर्शन के पूर्व का जीव) नवकार मंत्र का उच्चारण कर नदी के प्रवाह में कूद पड़ता है। वहाँ लक्ष्य के प्रति पूर्ण समर्पण है किंतु उसके देखा-देखी दूसरा भी वैसा करे तो वह डूबकर प्राण गवाँ सकता है। वह अंधश्रद्धा होगी। आत्मभाव पूर्वक श्रद्धेय-लक्ष्य के प्रति पूर्ण सर्मपण का प्रतीक होने से वह अंधश्रद्धा नहीं सजग श्रद्धा है।

7 जुलाई, 1993

62

सजग श्रद्धा

सजग श्रद्धा

↓

आत्मभाव पूर्वक + श्रद्धा + समर्पण

63

समग्रता

श्रद्धा जीवन का वह सूत्र है जो समग्रता की ओर ले जाने वाला है। वहाँ तर्क नहीं होता। वहाँ भ्रांति नहीं होती। वहाँ होती है जिज्ञासा। वहाँ होती है तत्त्व की मीमांसा। वहाँ एक ही ललक, एक ही भावना होती है। वह ललक होती है साध्य को प्राप्त करने की। वहाँ पीछे मुड़कर देखने का भी अवकाश नहीं रहता। श्रद्धावान पीछे मुड़कर यह नहीं देखता कि पीछे क्या है अथवा क्या हो रहा है। वह तो अर्जुन की तरह अपने लक्ष्य को, साध्य को देखता है। इस प्रकार की श्रद्धा जब प्रकट होती है तो वहाँ साध्य स्वयं समीप होता चला आता है।

8 जुलाई, 1993

63 समग्रता

64 अंधकार से प्रकाश की ओर...

अंधकार से अंधकार में गमन करते हुए अनंतकाल व्यतीत हो चुका है। कभी प्रकाश की एक किरण, एक लौ भी नहीं दिखी। अंधकार में ही लक्ष्यहीन गति होती रही। किंतु अनंत पुण्य के योग से जो प्रकाश पुंज सम्यक्त्व, वीतरागता का मार्ग प्राप्त हुआ, वह तमसो या ज्योतिर्गमय अर्थात् अंधकार से प्रकाश में आगमन है। फिर उसी मार्ग पर निरंतर गति करना प्रकाश से प्रकाश में गमन है जो सादी अनंतरूप हो सकता है।

23 जुलाई, 1993

64 अंधकार से प्रकाश की ओर...

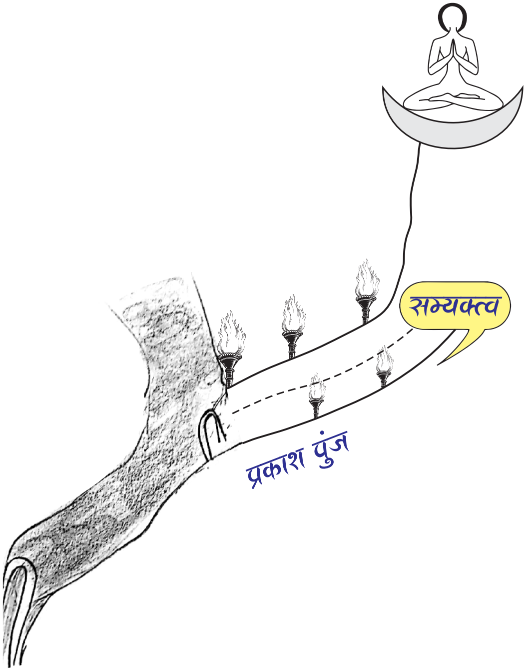

65 ज्ञान चक्षु खोलें

साधना का मार्ग जितना सहज है उतना ही जटिल भी है। कभी-कभी साधक भावुकतावश साधना के मार्ग में प्रवेश पा जाता है किंतु बाद में उसके लिए वह मार्ग बड़ा जटिल बन जाता है। अत: साधक को भावुकता में कोई निर्णय नहीं कर शांत चित्त से, गहराई से विचार कर निर्णय करना चाहिए। साधना में प्रवेश दिलाने वाले धर्मगुरुओं का भी यह दायित्व है कि वे किसी की भावुकता का लाभ न उठावें बल्कि उसे विवेक चक्षु, ज्ञान चक्षु प्रदान करें ताकि वह स्वयं हेय, ज्ञेय और उपादेय को जान सके।

24 जुलाई, 1993

65

ज्ञान चक्षु खोलें